# विकल्प पथ

सृष्टि को बने चाहे हजारों वर्ष हुए हों अथवा लाखों अथवा करोडों, जब से भी यह सृष्टि बनी है तब से दो प्रवृत्तियों के बीच निरंतर संघर्ष चल रहा है। एक को कहते है सामाजिक और दूसरी को समाज विरोधी। यह युद्ध लगातार चलता आ रहा है, अब भी चल रहा है और भविष्य मं भी चलता रहेगा। न कभी सामाजिक प्रवृत्ति के लोग समाप्त हुए है न ही समाज विरोधी प्रवृति के लोग। किन्तु कई बार सामाजिक प्रवृत्ति के लोग मजबूत हो जाते हैं तथा दुष्ट लोग जंगलो में छिपने को मजबूर हो जाते हैं तथा कई बार दुष्ट लोग मजबूत हो जाते हैं एवं सामाजिक लोग गुलामां की तरह जीवन जीने को मजबूर हो जाते हैं। प्रारंभिक काल मे इस संघर्ष को देवासुर संग्राम कहते थे, रामायण काल मे मनुष्य और राक्षस की लडाई तथा अब सामाजिक और समाज विराधी के बीच का संघर्ष कहते हैं। शब्द भले ही बदल गये हों किन्तु अर्थ कभी नहीं बदला है।

सामान्यतया सामाजिक लोगों की संख्या लगभग एक प्रतिशत तथा समाज विरोधियों की संख्या भी लगभग उतनी ही हुआ करती है। विशेष काल में यह संख्या कुछ कम ज्यादा होती रहती ह। बोच के नब्बे से लेकर अठान्नवे प्रतिशत लोगां को असंबद्ध या तटस्थ माना जाता है जिन्हे हम असामाजिक कहा करते हैं। एक एक्सीडंट टन के कराहते हुए यात्रियो की 1. सेवा सहायक करने वाले सामाजिक, शरीफ **Social** 2. यात्रियों को कराहते हुए देख सुनकर भी चुप रहने वाले तटस्थ असामाजिक **Unsocial** तथा 3. उनका सामान लूट ले जाने वाले व्यक्ति समाज विरोधी, अपराधी **Anti social** माने जाते हं। जो तटस्थ या असामाजिक होते हैं वे अपराधी विल्कुल नही होते । ये पूरी इमानदारी से अपना काम करते हैं। न किसी की सहायता करते हैं न छीनते ह। अपना खाली समय ताश खेलने, किकेट देखने, भजन गाने या परिवार मे व्यतीत करते हैं। ऐसे तटस्थ लोग अस्थिर हुआ करते हैं। यदि शरीफ लोग मजबूत होते है तो ये लोग उनके सहयोगी हो जाते है और यदि दुष्ट मजबूत होते ह तो ये उनकी चापलूसी किया करते हं।

जब शरीफ लोग मजबूत होते हं तथा दुष्ट पराजित हो जाते हैं उसे सामान्य काल कहते हैं किन्तु जब शरीफ लोग पराजित और दुष्ट लोग शक्तिशाली होते हैं उसे आपत्तिकाल कहते हैं। सामान्यकाल में प्राथमिकताएँ अलग और आपत्ति काल मे अलग हुआ करती है। सामान्यकाल में ऋषि मुनि, आचार्य और विचारकां का कार्य है आध्यात्म, पूजापाठ चरित्र निर्माण, नैतिकता का प्रसार प्रचार, योगासन, आदि सामाजिक कार्य तथा शासन की प्राथमिकता होती है भौतिक विकास, स्वास्थ्य शिक्षा पर्यावरण, सडक, बिजली, आदि अनेक जन सुविधा के कायं। किन्तु जब आपत्तिकाल होता है, शराफत संकट मे आ जाती है, जब शासन की संपूर्ण प्राथमिकताएँ बदलकर अपराध नियंत्रण में आकर सिमट जाती है तथा ऋषि मुनि, आचार्य एवं विचारक भी अपने सामान्य कार्य छोडकर अपराध नियंत्रण में शासन की सहायता में आ जाते हं। रामायण काल में दुष्ट प्रवृति के लोगों को शक्ति के समक्ष सामाजिक शक्तियॉ पराजित हो गई थी। आचार्यो, विद्वानो, विचारको तथा ऋषि मुनियां ने स्थिति का ठीक ठीक आकलन करके आपातकालीन प्राथमिकताएँ निर्धारित कर दी। धर्म का अर्थ बदल गया। आश्रम हथियार बनाने लगे तथा आश्रमो मे भी मानवता के स्थान पर सुरक्षा की योजनाएँ बनने लगी। भगवान राम जिस आश्रम में गये वहां से उन्हे शस्त्र भी दिये गये और शस्त्र चलान की टनिंग भी। जिस भगवान राम ने यज्ञ को श्रेष्ठतम काय कहकर विश्वामित्र के यज्ञ की सुरक्षा की थी उन्हीं ने मेधनाद के यज्ञ का यह कहकर विध्वंस कर दिया की आपातकाल मे यज्ञ महत्वपूर्ण नहीं होता बल्कि महत्वपूर्ण होती है यज्ञ से प्राप्त शक्ति। यदि उससे सामाजिक शक्ति मजबूत हो तो ऐसे यज्ञ की सुरक्षा करनी चाहिये आर यदि समाज विरोधी शक्तियॉ मजबूत होती हो तो वैसे यज्ञ का विध्वंस करना ही धर्म है। महाभारत काल में भी कृष्ण ने आपातकालीन परिभाषाएँ लागू की। आपातकाल में शराफत घातक होती है। शराफत छोडकर समझदारी से काम लेना ही उचित होता है। भगवान कृष्ण ने यदि युधिष्ठिर और अर्जुन को शराफत के स्थान पर समझदारी से काम लेने हेतु उपदेश तथा दबाव नही बनाया होता तो ये सब शराफत मं मारे जाते। शरीफ भीष्म पितामह ने अपनी प्रतिज्ञा नही तोडो, अन्त तक राजगद दो के प्रति वफादार बने रहे। दूसरी और कृष्ण ने परिस्थिति अनुसार अपनी प्रतिज्ञा का अर्थ बदलकर उसका उपयोग किया। आपातकाल में सत्य, धर्म, मानवता, शराफत आदि शब्दा का पूरा का पूरा अर्थ बदल जाया करता है। यही राम ने किया और यही कृष्ण ने किया और यही आज भी होना चाहीये। शराफत और समझदारी मं बहुत फर्क होता है। शराफत का अर्थ होता है कर्तब्य करना, अधिकारा की चिन्ता नहीं करना। समझकारी का अर्थ होता है कर्तव्य अधिकार दोनों की चिन्ता करना। शराफत में व्यक्ति को निरभिमानी होना चाहिये और समझदारी मं स्वाभिमानी। शराफत मे निर्णय भावना प्रधान तथा हदय महत्वपूर्ण होता है, समझदारी में निर्णय विवेक प्रधान तथा मष्तिस्क पूर्ण महत्व होता है। सामान्यकाल मं शराफत गुण मानी जाती है और आपत्तिकाल में घातक एव मूर्खता। सामान्यकाल मे असंबद्ध, असामाजिक दो नम्बर के लोगों से दूरी बनाकर रखने की आवश्यकता है। इस समय उन्हे नैतिक शिक्षा, हदय परिवर्तन आदि प्रयत्नों के माध्यम से शराफत की और मोडने की आवश्यकता होती है। आपात्काल मं इन दो नम्बर वालां से दूरी समाप्त करने की आवश्यकता होती है। इस समय न नैतिक शिक्षा की आवश्यकता है, न ही चरित्र निर्माण की। यह समय है असंबद्ध अनैतिक, असामाजिक लोगो से सामंजस्य की। सामान्यकाल मे ध्रुवीकरण सामाजिक अर्थात एक नम्बर विरूद्ध अन्य होता है। आपत्तिकाल मे ध्रुवीकरण समाज विरोधी अर्थात तीन नम्बर विरूद्ध अन्य का होना चाहिये। इसका स्पष्ट अर्थ है कि आपत्तिकाल में दो नम्बर के लोगों से शासन को तो कोई छेडछाड करनी ही नही चाहिये, समाज को भी मित्र वत व्यवहार बनाकर रखना चाहिये। यदि आपत्तिकाल मं शासन या समाज चरित्र निर्माण, नैतिकता, आध्यात्म, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, आबादी नियंत्रण, भौतिक विकास आदि को प्राथमिकता देता है तो यही माना जायगा कि वह 1. परिस्थितियों को आपात्काल के समान महसूस नही कर रहा है, अथवा 2. वह इतना नाममझ है कि स्वयं को उसके अनुरूप बदल नहीं पा रहा है अथवा 3. वह इतना धूर्त है कि सबकुछ समझते हुए भी नामसझ बनकर समाज को धोखा दे रहा है।

पांच प्रकार के कार्य अपराध की श्रेणी में आते है 1. चारी, डकैती, लूट 2. बलात्कार 3. मिलावट, कमतोल 4. जालसाजी, धोखाधडो 5. दादागिरी, गुण्डागर्दी, आतंक। ये सभी कार्य तीन नम्बर (समाज विरोधी) मे शमिल हैं। इनके अतिरिक्त अन्य गलत कार्य अनैतिक, असामाजिक, गैरकानूनी **Ill egal** दो नम्बर कहे जो सकते हैं किन्तु अपराध नहीं। इनमें जुआ, शराब, गांजा, दहेज, ब्लैक,

तस्करी, छुआछूत, हरिजन आदिवासी महिला पिछडा वर्ग कानून उल्लंघन, शाषण, वन अपराध आदि हजारो कानूनां का उल्लंघन शामिल है। पांच अपराध पिछले पचास वर्षो में निरंतर बढ रहे हैं। सामान्यतया इनका प्रतिशत समाज मं एक से कम रहता है तथा अधिकतम पांच तक हो सकता है। तीन या चार अपराधी ही पंचान्नवे लोगा को भय ग्रस्त करके गुलाम बनाने के लिये पर्याप्त माने जाते हैं। वर्तमान मे इन अपराधियों की संख्या तीन या चार प्रतिशत के आसपास तक आ गई है । चोरी डकैती लूट की स्थिति पूरे भारत की प्रत्यक्ष ही है। इसने अब व्यवसाय का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। बिहार और उत्तरप्रदेश से निकलकर अब यह व्यवसाय अन्य प्रान्तों की ओर भी तेजी से बढ रहा है। रेल यात्रा भी सुरक्षित नही है। झारखंड के एक थानेदार से बस लूट के अपराधियों को न पकड पाने के संबंध मे पूछने पर मुझे बताया कि हम अपराधी को पकडकर देते हैं किन्तु गवाह, गवाही नहीं देता, वकील पैसा के लिये उसकी सहायता करता है, राजनैतिक दल वोट बैंक समझकर मदद करता है अपराधी किसी न किसी धार्मिक, राजनैतिक, जातीय या व्यावसायिक संगठन से जुड जाता है, न्यायाधीशों का भी वर्तमान आचरण पहले जैसा नहीं रहा। तब क्या ऐसे वातावरण मं थानेदार ही ऐसा मूर्ख है जो वह तो मेहनत करके शिकार करे और वकील, नेता, जज आदि समाज के अनेक अंग मिलकर खायें। हम स्वयं के उपयोग तक ही शिकार करते है। और पूछने पर उसने सहदयता से कहा कि जब आप लोग यह विश्वास कर लें कि सामाजिक परिवेश इस योग्य बन रहा है तो यह थानेदार भी आपसे बाहर नहीं रहेगा। उसके तर्को के समक्ष मैं निरूत्तर था। बलात्कार और महिला अपहरण में बहुत तीव्र वृद्धि भी पूरी तरह राष्ट व्यापी बीमारी का स्वरूप ले चुकी है। अनेक बलात्कार तो अब थाने तक भी नहीं पहुंचते। मिलावट पूरे भारत में स्वाभाविक स्वीकृति बन चुकी ह। तीन नम्बर का अपराध होते हुए भी मिलावट समाज में गंभीर अपराध के समान नही मानी जा रही है। कोई भी वस्तु शुद्ध मिल जायगी यह अपवाद स्वरूप ही है। शुद्ध वस्तु जब बाजार मं लोकप्रिय हो जाती है तो या तो बाद मं वही कम्पनी मिलावट कर देती है या उस वस्तु का नकली बांड बाजार मे इस तरह छा जाता है कि मिलावटी सामान की पहचान ही समाप्त हो जाती है। अब तो आई. एस आई या एगमार्का की भी पहचान विश्वसनीय नही रह गई है। जाल साजी भी लगातार तीव्र गति से बढ़ी है। व्यावसायिक जाल साजी तो आम बात पहले से ही है किन्तु अब तो नोट, बैंक, रेलवे टिकट, डाक टिकट, दवा, आदि महत्वपूर्ण स्थानां पर भी जाल साजी तेजी से पविष्ट हो गई है। अविश्वास इतना इतना गहरा हो गया है कि लोग असली चीज खरीदने से भी डर रहे हैं कि कहीं अधिक मूल्य के बाद भी वस्तु नकली न हो जावे। आतंकवाद पूरे भारत में अनक रूपों में आ चुका है। विदेशी आतंकवाद से सीमावर्ती क्षेत्र पूरी तरह अशान्त है। इस्लाम पूरी तरह आतंकवाद के शरणागत हो चुका है। संघ परिवार धीरे धीरे हिन्दुओं को भी आतंकवाद के तरफ ढकेल रहा है। नक्सलवाद एक चौथाई भारत में तो आतंक के माध्यम से समानान्तर व्यवस्था का रूप ग्रहण कर चुका है। शेष भारत में भी इसकी गति पर्याप्त तोव्र है। बहुत से नागरिक तो अब शान्ति व्यवस्था के लिये नक्सलवादियों पर शासन के अपेक्षा अधिक विश्वास करने लगे ह। उपरोक्त पांचो अपराध पिछले पच्चास वर्षो से निरंतर बढ़े हैं तथा भविष्य में भी इन्हें रोकने की न तो शासन के पास कोई योजना दिखती है न ही इच्छा शक्ति।

भारत में अपराधों में तो लगातार वृद्धि हुई ही है, छः प्रकार की समस्याएँ भी निरंतर वृद्धि पर हैं। इनमें 1) भ्रष्टाचार 2) सामप्रदायिकता 3) जातिवाद 4) चरित्र पतन 5) आर्थिक असमानता 6) श्रमशोषण शामिल हैं। भ्रष्टाचार की व्यापकता स्वयं सिद्ध है। इस पर कलम चलाकर प्रमाणित करने का प्रयास निरर्थक है। साम्प्रदायिकता भी निरंतर बढ़ रही है। धर्म, गुणात्मक सुधार की अपेक्षा संख्या वृद्धि को महत्वपूर्ण समझने लगे हैं। कांग्रेस पार्टी पचास वर्षो से मुस्लिम तुष्टीकरण तथा भारतीय जनता पार्टी का संघ समर्थित खेमा, जो निर्णायक रूप से मजबूत है, हिन्दू तुष्टी करण को ही आधार बनाकर चल रहा है। जाति वाद भी लगातार पैर पसार रहा है। जातीय संगठन कुकुरमुत्ते की तरह पैदा हो रहे है। भारतीय संविधान में न चाहते हुये भी मजबूरी में अल्पकाल के लिये जिस जातिवाद से आंशिक समझौता किया था उसे सत्ता संघर्ष के उद्देश्य पूर्ति के लिये खाद पानी मानकर निरंतर बढ़ाया जा रहा है। पूरे भारत के प्रत्येक नागरिक के चरित्र में गिरावट आई है तथा आ रही है। यदि हम सन् पचास में किसी का चरित्र सौ प्रतिशत था तो उसका घटकर अस्सी हो चुका है तो साठ प्रतिशत वालों का तीस और तीस प्रतिशत वालों का शून्य। यदि किसी का चरित्र उस समय दस प्रतिशत होगा तो उसका चरित्र शून्य से भी घटकर आपराधिक हो चुका होगा। आर्थिक असमानता तीव्र गति से बढ़ी है। गरीबी तो पचास वर्षो में घटी है किन्तु आर्थिक सम्पन्नता गरीबों की, पैदल की चाल से बढ़ी हैं तो धनवानों की हवाई जहाज की रफ्तार से। श्रम का बुद्धिजीवियों द्वारा निरंतर योजना बद्ध तरीके से शोषण जारी है। पचास वर्षो में श्रम का मूल्य करीब ढाई गुणा बढा है जबकि बुद्धि का मूल्य पचीस से पचास गुना तक बढ़ गया है। बुद्धिजीवियों ने श्रम का शोषण करने के उद्देश्य से शिक्षित बेरोजगारी नामक एक नया शब्द बनकर नया वर्ग पैदा कर लिया। अब उन्हें शिक्षित बेरोजगारी के नाम पर श्रम शोषण का वैधानिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त हो गया है। इस तरह भारत में छः प्रकार की कृत्रिम समस्याएँ पचास वर्षो में निरंतर बढ़ी हैं।

पांच प्रकार की अपराधों तथा छः प्रकार की समस्याओं का लगातार बढ़ते जाना यह प्रमाणित करता है कि वर्तमान समय या तो आपात्काल है अथवा आपात्काल के निकट है। सम्पूर्ण प्रशासन को तो पूरी तरह इन अपराधां तथा समस्याओं के निराकरण में लग ही जाना चाहिये, विचारकों, समाजशास्त्रियों, गुरूओं तथा आश्रमों को भी अब आपात्कालीन प्राथमिकताओं पर काम शुरू कर देना चाहिये। समाज का स्वरूप तो बिखर चुका है। सामाजिक धार्मिक आध्यात्मिक संस्थाएँ ऐसी विकट परिस्थिति में भी नैतिकता, परलोक सुधार, चरित्र निर्माण, व्यसन मुक्ति से उपर उठने के लिये तैयार नहीं है। इन संस्थाओं का नेतृत्व या तो धूर्तो के हाथ में हैं अथवा ऐसे शरीफ लोगों के हाथ में जो समझदारी की आवश्यकता ही महसूस नहीं करते। ये शरीफ लोग यज्ञ मंडप मं आग लग जाने के बाद भी यज्ञ के स्थान पर आग बुझाने को प्राथमिकता देने के लिये तैयार नहीं। आपतिकाल में भी भीष्म, अर्जुन या युधिष्ठिर के समान बात करते हं, राम और कृष्ण के समान नहीं। ये राम और कृष्ण के अभियान में सबसे बड़ी बाधा है। स्वामी दयानन्द ने सबसे पहले स्वतंत्रता को जन्म सिद्ध अधिकार घोषित किया था। महात्मा गांधी ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति स्वराज्य के लिये लगा दी थी । महात्मा गांधी को विदेशी गुलामी से मुक्ति भी मिली और वे शेष समय आन्तरिक प्रशासनिक गुलामी से मुक्ति में लगाने वाले थे। किन्तु इनके प्रमुख समर्थक आर्य समाज और सर्वोदय इस आपात्काल की स्थिति में भी व्यसनमुक्ति, स्वदेशी शिक्षा और हिन्दी की रट से आगे उठने की नहीं सोचते। गायत्री परिवार से

भी जो कुछ उम्मीद थी वह भी चरित्र निर्माण तक आकर सिमट गई है। कोई भी ''परित्राणाय साधूनाम्, विनाशाय च दुष्कृताम्'' की लीक पर चलना नहीं चाहता।

प्रशासन तो सुरक्षा और न्याय के निमित्त बनाया ही गया था। किन्तु दुर्भाग्य है कि पचास वर्षो में किसी प्रधान मंत्री ने सुरक्षा और न्याय को सर्वोच्च प्राथमिकता नहीं दी। पच्चास वर्षो में एकमात्र विश्वनाथप्रताप सिंह जी ने बहुत हिम्मत करके उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बनते समय डकैती उन्मूलन का अपनी सर्वोच्च प्राथमिकता घोषित किया था। कुछ ही महिना में उनके न्यायधीश भाई की हत्या तथा मुख्यमंत्री पद त्याग ने उन्हें ऐसी घोषणा के खतरे बता दिये। अब जब वे प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने गरीबी उन्मूलन, भ्रष्टाचार नियंत्रण चेचक और अशिक्षा उन्मूलन के नारे दिये किन्तु डकैती और आतंकवाद उन्मूलन को भूल जाना ही उचित समझा। आज भी सम्पूर्ण भारत में एक भी ऐसा नेता नहीं है जो अपराध नियंत्रण के विरूद्ध प्राथमिकता की आवाज लगा सके भारत के एक राष्टपति के. आर. नारायणन जी ने राष्ट्रपति रहते हुये यह बचकानी बात कही दी कि भारत के कानून या यहॉ की व्यवस्था दोष पूर्ण नहीं बल्कि दोष यह है कि आम लोग उनका ठीक से पालन नहीं करते। सोचने की बात है कि एक पागलखाने का डाक्टर यह तर्क दे कि रोगी उसकी बात ठीक से समझता ही नहीं या उसके कहे अनुसार आचरण नहीं करता अथवा एक ट्रैफिक का सिपाही कहे कि उसके इशारे के बाद लोग दाये बायें चलते हैं तो वह क्या करे? यदि आम लोग कानूनों का ठीक ठीक पालन ही करते तो फिर किसी राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री की आवश्यकता ही क्या थो? यदि देश में कोई सरकार है तो यह स्वयं सिद्ध है कि कुछ कानून तोडने वालों को उनका पालन करने हेतु मजबूर करने के उद्देश्य से ही उसकी नियुक्ति और स्थापना हुई है।

प्रजातंत्र में कोई भी सरकार जब न्याय और सुरक्षा देने में विफल हो जाती है अथवा वह न्याय आर सुरक्षा से कतराती है तो उसे अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये दस प्रकार के नाटक करने पडते हैं। नाटक के दस सूत्र इस प्रकार हं :–

1) समाज में कभी संगठित न होने देना। समाज को धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रोयता, उम्र, लिंग, तथा आर्थिक स्थिति के आधार पर वगां मं बांटकर वर्ग विद्वेष पैदा करना तथा उक्त विद्वेष को वर्ग संघर्ष तक ले जाना। धर्म के आधार पर वर्ग संघर्ष पूर्णता के ओर है। जाति के आधार पर भी लगातार वही दिशा है। भाषा का आधार चरम पर पहुंच कर अब कमजोर पड़ रहा है। क्षेत्रोयता का भी वही हाल है। उम्र का संघर्ष अपने प्रांरभिक चरम में है। गरीब अमीर के बीच का संघर्ष भो चरम पर हं। किन्तु ये सारे संघर्ष अब तक समाज में विघटन कर रहे थे। इनसे परिवारों में विघटन नहीं हुआ था। अब सातवें विद्वेष की जो नींव पड़ी है, वह अत्यन्त ही घातक है। परिवार में पुरूष का अत्याचारी और शोषक बताकर महिलाओं में शोषित होने का जो विद्वेष पैदा किया जा रहा है वह अत्यन्त ही हानिकर परिणाम देगा। आप गंभीरता से सोचिये कि यदि पति–पत्नि के पारिवारिक जीवन में कानून और अविश्वास का प्रवेश हुआ तो कैसे आपकी आगे संतान पैदा होगी, कैसे उनका लालन पालन होगा? महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव को दूर करने के नाम पर परिवारों के बीच अविश्वास समाज के लिये गंभीर समस्याएँ पैदा करेगा। भारत के राजनेता महिलाओं का एक पृथक वर्ग बनाकर वर्ग विद्वेष पैदा करने के लिये इतने उतावले हैं कि उन्होंने एक बार तो संसद में इस बात पर ही विचार किया कि क्या परिवार में महिलाओं को सप्ताह में एक दिन की छुट्टी होनी चाहिये। इस तरह हमारी सरकारें समाज को वर्गो मं बांटकर वर्ग विद्वेष को वर्ग संघर्ष तक ले जाने का कार्य पूरी इमानदारी से सफलता पूर्वक कर रही है।

2) समाज मं समस्याएँ पैदा करना और उनका समाधान करना। इस सूत्र के अनुसार समस्याओं का ऐसा समाधान खोजा और किया जाय जो किसी एक नई समस्या को जन्म दे। उक्त नई समस्या का भी ऐसा ही समाधान हो जो एक और नई समस्या को उत्पन्न करे। न कभी समस्याएँ कम हों न उनका समाधान हो।

3) आम नागरिकों को अक्षम, अयोग्य और अशिक्षित बताकर उन्हें इस सीमा तक शासन के मुखापेक्षी बना देना कि उनकी सम्पूर्ण मानसिकता गुलामों के समान हो जावे। स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेज यही तर्क देते थे कि भारत के आम लोग अक्षम, अपढ़ और अयोग्य है। ये अपना निर्णय स्वयं नहीं कर सकते, इसलिये इनके हित–अहित का निर्णय करने हेतु हमारा रहना अनिवार्य है। आज के शासक भी यही कर रहे ह। हेल्मेट पहन कर गाडी चलाना, तम्बाखू खाना या नहीं, किस उम्र में विवाह करना, दहेज लेना या नहीं, जैसे नितान्त व्यक्तिगत या पारिवारिक अथवा गांव की गांव सम्बन्धी व्यवस्था में किन वस्तुओं पर कर लगे, गांव के शिक्षक के वेतन क्या हो, गांव में शराब बन्दी हो नहीं, जैसे नितान्त स्थानीय समस्याओं पर भी गांव के व्यक्ति या परिवार के स्थान पर उचित अनुचित का निष्कर्ष भी शासन ही निकाले और कार्यान्वित भी शासन ही करने लगा। शासन की इस अति सकियता से आम नागरिकों को स्वयं की चिन्तन शक्ति इतनी निष्क्रिय हो गई है कि उसे एक प्रकार की जंग लग गई। आम लोग के शासन के निर्णय के उचित–अनुचित निष्कर्ष निकालने की क्षमता भी खो बैठे। साथ ही हर कार्य शासन पर निर्भर हो जाने से गांव, परिवार और व्यक्ति की भूमिका एक ऐसे मालिक के समान हो गई जो अपने प्रत्येक कार्य के लिये अपने नौकर का गुलाम हो गया। न तो उसे अपने घर का समान कहा रखा है यह पता हैं न ही इसकी आवश्यकता महसूस है। आज भारत का आम आदमी सरकार पर इतना अधिक निर्भर हो गया है कि वह हर कार्य के लिये सरकार की तरफ देखता है तथा हर निर्णय के नेताओं के तरफ।

4) अधिक से अधिक कानून बनाकर प्रत्येक नागरिक को इस प्रकार अपराध भाव **Gulty Concious** से ग्रसित करना कि कोई व्यक्ति सिर उठाकर स्वयं को एक नम्बर न कह सकें। आज भारत में इतने अधिक कानून बना दिये गये हैं कि भारत का एक भी व्यक्ति स्वयं को एक नम्बर घोषित नहीं कर सकता। किसानों के लिये न्यूनतम मजदूरी के कानून, भिखमंगों के लिये भीख लाइसेंस, शिक्षको के लिये ट्यूशन पर प्रतिबंध, राजनेताओं के चुनाव खर्च का सही हिसाब आदि कानून इस तरह बनाये गये कि इनका पालन करना संभव ही नही रहा। शासन ने बडो चालाकी से अपराध शब्द की परिभाषा बदलकर गैर कानूनी कार्यों को भी अपराध कहना शुरू कर दिया। अब सम्पति चोर सिर उठाकर बात करने लगा और टैक्स चोर सिर झुकाकर चलने लगा। मिलावट करने वालां की अपेक्षा अवैध शराब का व्यवसाय

करने वाला अधिक शर्म महसूस करने लगा। गैर कानूनी कार्यों में अपराधी इस प्रकार छिप गये जैसे भूसे के ढ़ेर मे सुई छिप जाती है। अब भी प्रतिदिन इतने नये नये अनावश्यक कानून बन रहे ह कि परजीवी छुटभैये नेता, पत्रकार या अपराधी आम मेहनत कश इमानदार दो नम्बर वालों के ब्लैकमेल करते रहते ह।

5) शासन को समाज में अपनी भूमिका ऐसी बनाकर रखनी चाहिये जैसे बिल्लियों के बीच बन्दर। बन्दर को चाहिये कि वह अपनी सफलता के लिये तीन काम करें :–

(1) बिल्लियों की रोटी कभी बराबर न होने दे

(2) छोटी रोटी वाली बिल्लियों को कभी संतुष्ट न होने दे

(3) अपनी सक्रियता निरंतर बनाये रखे।

भारत सरकार यह कार्य पूरी सफलता से कर रही है। आर्थिक असमानता कभी न घटे, बल्कि बढ़ती ही रहे यह पचास वर्षो से हो रहा है। गरीब लोगों का अमीर लोगों के विरूद्ध असंतोष भी कम न हो। बड लोग गरीबा का शोषण करके ही बड बने हैं तथा उनके विरूद्ध योजनाएं बनाना हर गरीब का कर्तव्य हैं, यह बात लगातार समझाई जाती ह। कुछ लोग तो यहां तक समझते हैं कि आर्थिक असमानता ही भारत की सारी समस्याओं का केन्द्र है। हमें सर्वोच्च प्राथमिकता इसके समाधान को देना चाहिये। इस तरह असंतोष की आग निरंतर जलाकर रखी जा रही है। एक तरफ तो आर्थिक असमानता घटने नहीं दी जा रही है, दूसरी ओर आर्थिक असमानता घटने मे निरंतर सक्रियता बनाये रखी जा रही है। हर छोटा या बडा नेता गरीबी दूर करने में रात दिन लगा हुआ और परेशान दिखता है।

6) आर्थिक असमानता वृद्धि के लिये गुप्त प्रयास करना–प्रजातांत्रिक व्यवस्था म आम नागरिकां का विश्वास सर्वाधिक प्रमुख आवश्यकता होता है। आर्थिक असमानता वद्धि के प्रयास भी इस प्रकार होने चाहिये कि आम नागरिकों को उसका अहसास न हो। इस कार्य के लिय सर्वाधिक उपयुक्त नीति मानी गई है ''सम्पन्नों पर प्रत्यक्ष कर तथा अप्रत्यक्ष सुविधा **Subsidy** जबकि गरीबों पर अप्रत्यक्ष कर और प्रत्यक्ष सुविधा। भारत सरकार यह काम बहुत सफलता पूर्वक कर रही है। सम्पन्न लोगों पर इन्कमटैक्स नाम स एक बिन्दु का प्रत्यक्ष कर लगाकर बिजली, जमीन, ब्याज उद्योग **Subsidy** आदि पर भारी भरकम अप्रत्यक्ष छूट दी जाती है। दूसरी ओर गरीब और श्रमजीवियों के उत्पादन और उपभोग के सामान्य वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष कर लगाकर प्रत्यक्ष छूट दी जाती है। पचास वर्ष का लम्बा समय बीत जाने के बाद भी भारत में आनाज, कपडा, दवा, ईंटा, खपड़ा, साइकिल, घास, भूसा, खली, आदि हजारों ऐसी वस्तुओं पर भारी अप्रत्यक्ष कर लगते है जो मूलतः श्रम उपयोग की हैं। सरसों तेल पर कही दो रू. तो कही चार रू. प्रति लीटर का भारी कर है। साइकिल निर्माण पर दो सौ से तीन सौ रूपये तक उत्पादन कर हैं। सभी प्रकार की वनोपज के उत्पादन तथा संग्रह पर भारी कर है। सालबीज संग्रह कता से आधा मूल्य शासन द्वारा ले लिये जाने से हमारे क्षेत्र का अस्सी प्रतिशत सालबीज पानी में बह जाता है। क्योंकि श्रमिक इकट्ठा ही नहीं करता। श्रमिक द्वारा इकट्ठे किये गये बीडो पता पर भी आधा मूल्य सरकार ले लेती है। अपने खेत में अपने श्रम से पैदा की गई इमारती लकड़ी काटने के नाम पर कलेक्टर और न्यायालय उसके स्वामी की भूमिका अदा करते हैं और उस लकड़ी के खरीदने वाले से तीस प्रतिशत वाणिज्यकर शासन वसूल करता ह। मेरे अनुसंधान अनुसार सिर्फ वनोपज पर से सभी कर समाप्त कर दें तो गरीबो को कोई सुविधा नहीं देनी होगी तथा पर्यावरण की आवश्यकता से अधिक वृक्षारोपण भी हो जायगा। दूसरी ओर पोस्टकार्ड, मिट्टीतेल जैसी वस्तुओं पर छूट दो जाती है, जिनका श्रमिक कम और अन्य लोग अधिक उपयोग करते ह। सबसे खास बात यह है कि उद्योगों पर ब्याज दर कम और कृषि ऋण पर अधिक है। कृत्रिम उर्जा अखबार तथा टेलीफोन पर टैक्स न लगाकर अनाज, तेल, वनोपज और साइकिल पर कर लगाया जाता है। इस विपरीत अर्थ व्यवस्था के ही परिणम स्वरूप भारत में आर्थिक असमानता में इतनी वृद्धि हुई है। सबसे बडा आश्चर्य है कि भारत के अधिकांश राजनेता या समाज शास्त्री यह साधारण जानकारी ही नहीं रखते कि रोटी, कपड़ा, दवा, साइकिल पर भारी कर है।

7) प्रशासनिक समास्याओं का आर्थिक सामाजिक समाधान तथा सामाजिक समस्याओं का प्रशासनिक समाधान करने का प्रयत्न। चोरी, डकैती, बलात्कार, मिलावट, आतंक, जालसाजी पूरी तरह प्रशासनिक समस्याएँ ह। इनका समाधान हृदय परिवर्तन अथवा भौतिक विकास के माध्यम से करने का प्रयास करते ह, जबकि छुआछूत, दहेज, जुआ जैसी सामाजिक समस्याओं का समाधान कठोर कानून के माध्यम से होता है। हल्की मार पीट में धारा 323 लगाकर पुलिस गिरफ्तारी न करके या कोई केश न बनाकर कोर्ट जाने की सलाह देती है जबकि जुआ में पुलिस स्वयं केश बनाकर चालान करती है। अवैध बन्दूक या पिस्तौल रखने वालों का केश छोटे कोर्ट में चलता है और जल्दी जमानत योग्य है किन्तु अवैध गांजा या अवैध अनाज का मामला अवैध शस्त्र की अपेक्षा कई गुना अधिक गंभीर भी है और विशेष न्यायालय में पलता है। इनकी जमानत भी आसान नहीं हैं। आग लगने, सांप काटने, रेल दुर्घटना आदि का मुआवजा मिल सकता है किन्तु हत्या या डकैती में मुआवजा का प्रावधान नहीं। ऐसा महसूस होता है कि अपराधी तत्व हमारी संसद में इतने शक्तिशाली स्थिति में हैं कि अधिकांश सांसद उनकी मर्जी पर काम करते ह। वे लोग अवैध बन्दूक पिस्तौल को साधारण और अवैध अनाज गांजा को गंभीर अपराध घोषित कर देते हैं। आश्चर्य की बात है कि चोरी, डकैती और बलात्कार जैसे संगीन अपराधों में सबूत का भार पुलिस पर है तथा संदेह का लाभ अपराधी को मिलता है, जबकि आदिवासी हरिजन कानून, वन अपराध, छुआछूत तथा अवैध अनाज आदि के मामलों में सबूत का भार अपराधी पर है और संदेह का लाभ उसे नहीं मिलता। चोरी, डकैती, बलात्कार और मिलावट में शतप्रतिशत न्याय तक की पूरी सतर्कता रखी जाती है और दहेज, वन अपराध, आदिवासी हरिजन आदि अनेक मामलों में न्यायालय की परिधि से बाहर रखने की अलोकतांत्रिक प्रणाली, तक की कठोरता बरती जाती है। कई मामलों में इतनी कठोरता है कि वकील तक खड़ा नहीं हो सकता।

8) समाज में वैचारिक मुद्दों के स्थान पर भावनात्मक मुद्दों को आगे लाना–आवश्यकता इस बात की है कि समाज में राजनैतिक बहस के प्रमुख मुद्दे वैचारिक होने चाहिये। किसी दल ने कितनी योग्यता और सक्षमता से काम किया, इसके गुण दोष पर चर्चा होनी चाहिये किन्तु दुर्भाग्य है कि भारत में राजनैतिक बहस कभी प्याज और टमाटर पर केन्द्रित कर दी जाती है तो कभी मंदिर और गोहत्या पर। एक बार श्रीमतो गांधी की हत्या को ही वोट प्राप्त करने का आधार बनाया गया। आज तक कभी भी किसी दल न वैचारिक मुद्दों को सामने लाने का प्रयास नहीं किया। जिस देश में प्याज और मंदिर जैसे अल्पकालिक तथा भावनात्मक मुद्दों पर पांच वर्ष की सरकार बनाने की कोशिश होती है। वहॉ की स्थिति की कल्पना ही की जा सकती है। संसद में भी शायद ही कभी गंभीर विचार होता हो अन्यथा आम तौर जनता की भावनाओं को उद्वेलित करने वाली भाषा, भाषण या क्रियाएँ ही वहॉ देखने को मिलती हैं। बात–बात में संसद से बहिर्गमन या शक्ति प्रयोग आम बात हो गई है। अब तो संसद, या राजनीति में खिलाड़ी, मजाकिया, ऐक्टर जैसे कला प्रमुख भीड को आकर्षित करने वाले भी महत्वपूर्ण स्थान पाने लगे हं।

9) समाज शब्द की महता को लगातार कमजोर करके राष्ट्र शब्द को व्यापक स्वरूप देनाः– पूरे भारत में यह कार्य योजनापूर्वक चलया जा रहा है। अब तो स्थिति यह है कि सिर्फ राजनीतिज्ञ ही नहीं, समाजशास्त्री या धर्म गुरू भी राष्ट्र को समाज से अधिक महत्वपूर्ण मानने लगे हैं। मैने शाहजहाँपुर कालेज मं यह प्रश्न किया कि राष्ट बडा है या समाज तो सभी विद्यार्थियों तथा प्राध्यापकां ने राष्ट्र को बडा बताया । मंने फिर पूछा कि पाकिस्तान का नागरिक समाज का अंग है या नहीं तब उन्हे अपनी भूल का अहसास हुआ। राष्ट्र की एक भौगोलिक सीमा होती है किन्तु समाज की नहीं। भारतीय समाज, पाकिस्तानी समाज, हिन्दू समाज, इसाई समाज, ये सभी समाज के भाग **(Part** )होते है, प्रकार **(Kind)** नहीं। ऐसा हो ही नहीं सकता कि कोई टुकड़ा मूल से बडा हो। किन्तु बडो चालाकी से राष्ट शब्द को समाज से उपर कर दिया गया है और समाज शब्द को हिन्दू–मुसलमान, महिला–पुरूष आदि में बांटकर उसकी महत्ता को घटा दिया गया है।

10) अपने कार्यो की प्राथमिकताआं के कम को पूरी तरह उल्टा **Reverse** कर देना–कुल समस्याएँ पांच प्रकार की होती है 1–वास्तविक या स्वाभाविक–चोरी, डकैती बलात्कार, मिलावट कमतौल, जालसाजी धोखाधडो गुण्डागर्दी आतंकवाद।

2–कृत्रिम या बनावटी–भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, चरित्रपतन, जातीवाद आर्थिक असमानता, श्रम शोषण।

3–प्राकृतिक–भूकम्प, बाढ सूखा, बीमारियां का प्रकोप।

4–भूमण्डलीय–पर्यावरण प्रदूषण, बढती आबादी, पूंजीवाद की बढती शक्ति

5–भ्रम या अस्तित्वहीन–महगाई, दहेज, शिक्षित, बेरोजगारी, अशिक्षा का नैतिकता पर दुष्प्रभाव, मुद्रास्फीति का गरीबां पर दुष्प्रभाव, बालश्रम, उत्पादक और उपभोक्ता के बीच बढती दूरी, शोषण, अल्पसंख्यकों पर बहुसंख्यकों का दबाव,

श्रृष्टि के प्रारंभ से आज तक शासन का सर्वोच्च दायित्व है न्याय और सुरक्षा। यदि हम प्राथमिकताओं का कम निर्धारित करें तो वह उपर लिखा ही कम होना चाहिये। किन्तु जब शासन सुरक्षा और न्याय न दे सके तथा उसे दस प्रकार के नाटक करने हों तो उसे उपर लिखी प्राथमिकताआं को पूरी तरह उलट कर विपरीत कम में कर देना चाहिये। वर्तमान शासन भी पचास वर्षों से अपनी प्राथमिकताएँ पूरी तरह उलट कर काम कर रहा है अर्थात अब शासन की सर्वोच्च प्राथमिकता भम या अस्तित्व हीन समस्याओं का समाधान है तथा सबसे अन्त में वास्तविक अपराध नियंत्रण है।

मैने लगातार पच्चीस तीस वर्षो तक गंभीर अनुसंधान करने के बाद भी यही पाया कि महंगाई और दहेज, पूरी तरह काल्पनिक समस्याएँ हैं। शिक्षित बेरोजगारी शब्द हो बुद्धिजीवियां द्वारा श्रम के शोषण के लिये पैदा किया गया है अन्यथा शिक्षित व्यक्ति अधिक अच्छे रोजगार की प्रतीक्षा में रहता है न कि बेरोजगार। शिक्षा न नैतिक होती है न ही अनैतिक। शिक्षा का व्यक्ति के चरित्र से कभी कोई संबंध नही होता। शिक्षा व्यक्ति की क्षमता का ही विकास करती है। व्यक्ति डाकू बनेगा कि सिपाही यह शिक्षा का परिणाम नहीं है। मुद्रा स्फीति बढने का गरोबों पर दुष्प्रभाव भी ना समझी ही है। मुद्रा स्फीति बढने से नगद रूपये की कय शक्ति घटती है न कि श्रम, बुद्धि या अन्य सम्पत्ति की। बालश्रम भी कोई समस्या नही हैं जिसका शासन समाधान करे। उत्पादक और उपभोक्ता भी कोई पृथक–पृथक वर्ग न होकर प्रत्येक व्यक्ति के ही दो स्वरूप हं। अल्प संख्यक बहुसंख्यक की समस्या भी नहीं है। प्रजातंत्र मं व्यक्ति एक इकाई होता है। शासन के समक्ष कोई अल्पसंख्यक हो ही नहीं सकता। ये सभी समस्याएँ यद्यपि काल्पनिक तथा अस्तित्वहीन हैं किन्तु इनका लगातार सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर समाधान हो रहा है जबकी अस्तित्वहीन होने से सभी समाधान भी हवा में लाठी चलाने के समान हैं। सबसे आश्चय जनक तथ्य यह है कि लगातार प्रचार के कारण भारत का आम नागरिक इन अस्तित्व हीन समस्याओं से त्रस्त भी महसूस कर रहा है तथा समाधान मं शासन का सहयोग भी कर रहा है। शासन कभी इन समस्याओं को कम और कभी ज्यादा बताता रहता है जबकी अस्तित्वहीन समस्याएँ कम ज्यादा होती ही नहीं।

दूसरी ओर शासन के सबसे कम प्रयास अपराध नियंत्रण के लिये हैं। केन्द्र और प्रदेश सरकारों के कुल वार्षिक बजट का सिर्फ एक प्रतिशत ही पुलिस और न्यायालय पर खर्च होता है। इस एक प्रतिशत का भी नब्बे प्रतिशत बजट धान, गांजा, वन उत्पादन, जुआ, शराब, वैश्यावृति, छुआछूत, आदिवासी हरिजन अपराध आदि दो नम्बर के कार्य नियंत्रण पर ही खर्च होता है। इस तरह सम्पूर्ण बजट का दशमलव एक प्रतिशत ही न्याय और पुलिस के अपराध नियंत्रक स्वरूप पर व्यय होता है जिस तरह कोई खाना खाकर जूठी पत्तल किसी को ओर सरका दे। बहुत दुख होता है देखकर कि वाड्रफनगर में रिबई पंडो के भूख से मरने को खबर पर मध्यप्रदेश सरकार तो पूरी तरह ही हिल गई थी। प्रधान मंत्री नरसिंहराव भी दौड़े–दौड़े वाडफनगर आये थे क्यांकि एक आदमी भूख से मर गया था। उसके ठीक दो दिन

बाद बलरामपुर में एक घर मं घुसकर डाकुओं ने लूटपाट के कम में दो हत्याएं कर दी तो कलक्टर भी नहीं आया। डकैत हत्या और भूख हत्या मे इतना नाटकोय अन्तर मै रोज देख रहा हूँ। भले ही लोग डाकुआ से मारे जावं किन्तु भूख से मृत्यु शासन की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। अभी कुछ दिन पूर्व ही सर्वोच्चय न्यायालय ने किसी प्रदेश मं एक भी भूख मृत्यु की स्तिथि में उस प्रदेश के मुख्य सचिव को जिम्मेवार घोषित किया है किन्तु उसी सुप्रोम कोर्ट ने हत्या, डकैती, आतंक और बलात्कार के लिये मुख्य सचिव को दोषी और जिम्मेवार नहीं माना। समझ मं नहीं आता कि क्या सम्पूर्ण कुएँ में ही भांग घुली है कि जो भी उसका पानी पोता है वही समान हरकत करने लगता है। हत्या और मृत्यु का अन्तर तो सामान्य नागरिक भी कर सकता है किन्तु कार्यपालिका और विधायिका जैसे प्रजातंत्र के ठेकेदार प्रहरी पता नही क्यों ऐसी बातें कर रहे हैं।

भारत का आम नागरिक जनता है कि भ्रष्टाचार, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, चरित्रपतन, आर्थिक असमानता तथा श्रम शोषण कृत्रिम समस्याएँ है जो शासन द्वारा समाज के बीच अनावश्यक हस्तक्षेप का परिणाम ह मं दिल्ली जाने हेतु गढ़वा स्टेशन पर टिकट की कतार मे खड़ा हूँ। कई लोग प्रभाव से या धक्का देकर पहले टिकट लेने म सफल हो रहे है और हमारी लाइन बहुत धोरे धोरे बढ रही है। ट्रेन का समय होते देखकर मेरा लडका भी मुझसे अनुमति लेकर वैसा ही करता है। टिकट लाने के बाद मंने उसे एक अशक्त वृद्धा को धक्का देने के विरूद्ध कहा तो उसका सीधा कहना था कि धक्का मजबूत को नहीं दिया जाता । जो हमसे मजबूत थे उन्हांने हमें धक्का दिया ओर कमजोर थे उन्हं मैने धक्का दिया और तर्क करने पर उसने सीधा प्रश्न किया कि क्या ट्रेन छोड देना उचित है? आप लोग तो जोवन भर धूर्तो और गुण्डों को ट्रेन पर सवार होते देखकर भी ट्रेन छोडकर खड रहे। हम एसा नही होने दंगे। या तो सब लाइन में होंगे या हम भी उसी तरह तैयार हैं जैसे और लोग। मैं निरूतर था। मैं मानता हूँ कि उक्त चुप्पी मेरा चरित्र पतन था किन्तु ट्रेन छोडने के तर्क में भी पर्याप्त दम था। आज प्रतिदिन ऐसे अवसर आते है कि शासन के कानूना का उल्लंघन करने वाला पालन करने वाले से अधिक सुखी है। ऐसी घटनाएँ प्रायः हो रही है। हमारे अनुसंधान में यह भी पूरी तरह सिद्ध हैं कि ये छः कृत्रिम समस्याएँ मामूली कानूनी हेर फेर से ठीक हो सकती हैं किन्तु इसके लिये कोई प्रयास नहीं होता। इससे अधिक प्रयास तो पयावरण प्रदूषण, अबादी नियंत्रण जैसी समस्याओं के समाधान में किया जा रहा है जो शासन के लिये प्राथमिकता के कम में इनके बाद होनी चाहिये।

भारत में वर्तमान जो भी समस्याएँ हैं उनके समाधान पर गंभीरता पूर्वक चिन्तन–मंथन किया गया।

1) यह मानव प्रकृति है कि किसी कार्य के परिणाम से प्रभावित व्यक्ति और कर्ता के बीच दूरी जितनी अधिक होगी उस कार्य की गुणवता उतने ही कम होती जायेगो। इस मानव प्रकृति के आधार पर शासन का हस्तक्षेप किसी भी कार्य में न्यूनतम ही होनी चाहिये।

2) समाज शास्त्रियों ने भी प्रमाणित किया है कि किसी अच्छी से अच्छी व्यवस्था से भी अपनी व्यवस्था अधिक अच्छी होती है। इस नीति निष्कर्ष के भी आधार पर शासन के दायित्व न्यूनतम ही होना चहिये।

3) राजनीतिक सूझ–बूझ यही कहती है कि जिस शासन की नीयत सदेहास्पद हो उसे एक क्षण भी स्वीकार करना गुलामी का प्रतोक है। वतमान शासन अपने प्रमुख दायित्व सुरक्षा और न्याय से मुँह फेर रहा हैं, अपराधियों से साठ गाठ कर रहा है अधिकारों का दुरूपयोग करके नित नई समस्याएं पैदा कर रहा है, तथा शासन दस प्रकार के ऐसे नाटक कर रहा है जो शासन को, फूट डालकर राज्य करने में सहायक हो सके।

इसलिये वर्तमान समस्याओं का पहला समाधान यही है कि शासन के हस्तक्षेप, दायित्व तथा अधिकार न्यूनतम हो। इस प्रयास को लोकस्वराज्य का नाम दिया जाय। हम शासन के अधिकार, दायित्व तथा हस्तक्षेप को इस सीमा तक कम कर दं कि व्यक्ति को व्यक्तिगत, परिवार को पारिवारिक, गांव को गांव सम्बन्धी, जिला को जिला संबंधी, प्रदेश को प्रदेश संबंधी तथा राष्ट्र को राष्ट्रीय मामलों की सीमा में निर्णय की पूरी स्वतंत्रता हो। किसी भी इकाई का किसी भी अन्य इकाई के इकाइगत मामलों में हस्तक्षेप न हो। शासन प्रत्येक इकाई को उक्त स्वतंत्रता को सुरक्षा गारंटी दे। इस तरह देश की अधिकांश समस्याएँ तो अपने आप ही सुलझ जायेंगी। कुछ शेष बची समस्याएँ मामूली संवैधानिक हेर फेर से समाप्त हो जावेंगी। पचीस वर्षो का यही निष्कर्ष है कि भारत की सभी समस्याओं का एक मुश्त समाधान लोक स्वराज्य में ही निहित है।

आज भारत में कई और भी संस्थाएँ इस निष्कर्ष पर पहुंची हैं किन्तु उनकी व्यक्तिगत कमजोरियाँ उन्हें स्पष्ट स्वरूप नहीं दे रही है। यह मानव स्वभाव है कि वह उपर वाले से तो स्वतंत्रता चाहता है किन्तु नीचे वालों को निर्णय की स्वतंत्रता नहीं देना चाहता। यही दुविधा लोक स्वराज्य अथवा ग्राम स्वराज्य के लिये काम करने वाली संस्थाओं के साथ भी है। ऐसी संस्थाएँ ग्राम स्वावलम्बन, नशामुक्ति, सर्व शिक्षा, स्वदेशी, अन्त्योदय जैसे प्रयासों को ग्राम स्वराज्य के लिये सहायक रूप में मानकर इन सबको ग्राम स्वराज्य के साथ जोड़ देती है जबकि सच्चाई यह है कि ये सभी कार्य ग्राम स्वराज्य के न तो सहायक है न ही आधार। इसके विपरीत ये सब तो ग्राम स्वराज्य के परिणाम है। यही कारण है कि पूरी इमानदारी और लगन से काम करने के बाद भी ग्राम स्वराज्य के पक्ष में कोई जन जागृति नहीं बन पा रही। ग्राम स्वराज्य जितना ही जनता के बीच आगे बढता है उससे कई गुना अधिक ये अन्य बोझिल प्रयास उसे पीछे खींच देते हैं। सुराज्य के प्रयास लोक स्वराज्य में बाधक है किन्तु यह साधारण बात भी हमारे मित्र नहीं समझ रहे। इसोलिये अन्य संगठनों के होते हुये भी हम लोगों ने लोक स्वराज्य मंच नाम से पृथक प्रयास करना तय किया। हम लोक स्वराज्य या ग्राम स्वराज्य के लिये काम करने वाली किसी भी संस्था के साथ है किन्तु हम लोक स्वराज्य के अतिरिक्त किये जाने अन्य प्रयासों में उनके साथ नहीं।

चार नवम्बर निन्यान्नवे को हम सब लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला कि भारत की सभी समस्याओं का समाधान का एकमात्र रास्ता लोक स्वराज्य है। किन्तु किसी भी अनुसंधान के परिणामों की ओर अधिक विश्वसनीय बनाने के लिये उसके कहीं सफल प्रयोग की आवश्यकता होती है। मुझे रामानुजगंज शहर का नगर पंचायत अध्यक्ष चुनकर लोक स्वराज्य पद्धति से व्यवस्था का दायित्व दिया गया। मैंने

चुनौती स्वीकार की। मैंने अध्यक्ष बनने के बाद नगर नगरपंचायत व्यवस्था में व्यापक कानूनी संशोधन किये। सत्रह सदस्यों की परिषद के अतिरिक्त चालीस लोगों का एक पृथक मंत्रीमंडल बना तथा बाहर सौ लोगों की एक मतदाता परिषद का गठन किया गया। पंचायत परिषद में प्रस्ताव पारित होने की न्यूनतम मत संख्या इक्यावन प्रतिशत से बढाकर अस्सी कर दी गई और यदि पार्षदों की सहमति अस्सी प्रतिशत से कम है तो वह प्रस्ताव मंत्रिमंडल में पारित होगा। यदि मंत्रिमंडल में भी बीस प्रतिशत विरोध होता है तो प्रस्ताव पुनः मतदाता परिषद में जायेगा। इसी तरह एक अन्य संशोधन द्वारा शहर में चोरी डकैती तथा दादागिरी गुण्डागर्दी रोकने का दायित्व भी नगर पंचायत ने सम्हाल लिया। ऐसे संशोधन के दूरगामी परिणाम हुये। नगरपंचायत में अल्पमत को भी महत्व मिला था तथा नागरिकों को भी सहभागिता बढ़ी। पिछले वर्षो में नगरपंचायत का विकास खर्च सत्तर गुना तक बढ गया जो एक रिकार्ड है। पूरे शहर में नगरपंचायत रात्रि गश्त कराती है तथा चोरी रोकने में पुलिस की सहायता करती है। पिछले तीन वर्षा से शहर में एक भी ऐसी चोरी नहीं हुई जो पकडो न जाय। दादागिरी और गुण्डागर्दी भी शून्यवत् है। राजनैतिक दादागिरी भी नहीं है।

अपराध नियंत्रण में अपराध और गैर कानूनी की पहचान बहुत बाधक थी। रामानुजगंज में यह कार्य किया गया। तीन नम्बर वालों की दो नम्बर से पृथक पहचान की गयी। एक नारा दिया गया कि गर्व से कहो हम दो नम्बर हैं। तीन नम्बर अपराध है। दो नम्बर के काम से तो शासन के अनावश्यक हस्तक्षेप का परिणाम है। इससे आम लोगों का मनोबल उॅचा हुआ और अपराधियों का गिरा। आम नागरिकों को लगातार यह भी समझाया गया कि आपत्तिकाल में शराफत धूर्तो का भोजन है। अतः आप लोग शराफत छोड़िये, समझदारी अपनाइये।

इन सब प्रयासों से रामानुजगंज नगर में जहां सुरक्षा और समझदारी मजबूत हुई है वही विकास का भी मार्ग खुला है। हम रामानुजगंज में प्रयोग करके सम्पूर्ण भारत में यह संदेश देने में सफल हुये हैं कि भारत की अधिकांश समस्याओं का समाधान लोक स्वराज्य प्रणाली में है। सच्चाई तो यह है कि तानाशाही का विकल्प प्रजातंत्र है और प्रजातंत्र का विकल्प लोक स्वराज्य।

यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि लोक स्वराज्य ही भारत की वर्तमान व्यवस्था का एक मात्र विकल्प है। यह काम अत्यन्त आसान भी है। भारत क आम नागरिक को यह बात वैचारिक आधार पर समझाने की आवश्यकता है। लोक स्वराज्य मंच का इस काम में तन्मयता से लगा है। तथा आपसे भी यह अपेक्षा है।

## गुजरात का सबक

भारतीय राजनीति में दो संगठन राजनीति से स्वयं को दूर कहते हुये भी पूरी तरह राजनीति मं सक्रिय है। 1) सुन्नी मुसलमान 2) राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ। ये दोनों संगठनों स्वयं को सास्कृतिक संगठन कहते हं। किन्तु दोनों का किसी संस्कृति से लेना देना नहीं। दोनों ही संगठनां का उद्देश्य कुछ अलग ही है। मुसलमान राजनीति से अपना धार्मिक उद्देश्य पूरा करना चाहते हैं तथा संघ धर्म से अपना राजनैतिक उद्देश्य को पूरा करना चहता है। मुसलमान अपने संगठित वोटों के आधार पर राजनतिक दलों को अपने इशारे पर नचाता रहता है। तथा संघ परिवार, मुसलमानों का नाम लेकर अपना वोट बैंक मजबूत करता रहता है।

इन दो संगठनों के अतिरिक्त एक तोसरा समूह भी है जिसे हम धर्म निरपेक्ष कहते हैं। इस वर्ग में अधिकांश वामपंथी, प्रगतिशील साहित्यकार तथा गांधीवादी लोग शामिल हैं। इस तोसरे समूह को भारत के आम नागरिकों में तटस्थ या धर्म निरपेक्ष माना गया किन्तु यह तीसरा वर्ग पूरे पचास वर्षो में कभी तटस्थ या धर्म निरपेक्ष नहीं रहा। बल्कि यह वर्ग पूरी तरह हिन्दू साम्प्रदायिकता का विरोधो मात्र रहा। इस तोसरे वर्ग में अधिकांश लोग हिन्दू थे। इन सबकी मनोवृति भी हिन्दू थी। हिन्दू संस्कार से ही धर्म निरपेक्ष होता है और यदि वह विशेष रूप से भी धर्मनिरपेक्ष बनने का प्रयास करना शुरू कर दे तो यह निश्चित है कि वह वास्तव में धर्म निरपेक्ष नही रहता, बल्कि दूसरे धर्म की ओर अधिक झुक जाता है। यही भारत के धर्म निरपेक्षों के साथ भी हुआ। इन्हें भारत में समान नागरिक संहिता में भी साम्प्रदायिकता नजर आने लगी। धर्म निरपेक्ष संविधान में भी अल्पसंख्यक की अवधारणा सम्मिलित करने की भूल भी इसी कारण संभव हुई। हिन्दुओं की सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिये हिन्दू कोड बिल को भले ही लागू किया जाय किन्तु मुसलमानों की आन्तरिक बुराइयों में हस्तक्षेप उनके धर्म का उल्लंघन है। धर्म निरपेक्षता के इस अतिवादी तथा एक पक्षोय सोच ने इस सब धर्मनिरपेक्षों को हिन्दू समाज में अविश्वसनीय बना दिया। गुजरात जैसे गांधी के राज्य में जहॉ की अधिकांश आबादी हिन्दू होने के कारण धर्म निरपेक्ष स्वभाव की है उनकी धर्मनिरपेक्षता को भी साम्प्रदायिकता में बदलने में संघ परिवार सफल रहा और हमारे पूरे भारत के बडे–बडे नामी धर्मनिरपेक्ष अपनी सारी ताकत लगाकर भी उन्हें नहीं रोक सके। इसका कारण यह नही है कि इनके प्रयत्न कमजोर थे बल्कि इसका एकमात्र कारण था कि इनकी धर्मनिरपेक्षता अविश्वसनीय हो गई थी।

मैंने गुजरात चुनावों के पूर्व माननीय ठाकुरदास जी बंग को पत्र लिखकर इस खतरे के प्रति सचेत किया था। अबोहर की संगीति में भी मैंने यह स्थिति स्पष्ट की थी। पटना में मंच पर कुलदीप नैयर, पभाष जोशी, मेघा पाटकर जैसे धुरंधरों के बीच मैंने कुछ न कहना उचित समझा। किन्तु मेरा मन किसी अप्रिय परिणाम की कल्पना कर रहा था। कांग्रेस पार्टी ने गुजरात में बहुत बुद्धिमानी का काम किया कि उसने साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को रोकने की भरसक कोशिश की। उसने बावेला जैसे कट्टर हिन्दू को नेता बनाया तथा मन्दिरां से अपने कार्यक्रम शुरू किये। कांग्रेस ने भरसक कोशिश की कि चुनाव साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण न हो किन्तु मुसलमानों न तथा धर्मनिरपेक्ष समर्थकों ने चुनाव में संघ परिवार का ऐसा विरोध किया कि कांग्रेस पार्टी के सारे प्रयत्न विफल हो गये। गंभीरता से सोचने की जरूरत है कि गोधरा ट्रेन मे लगने वाली आग के लिये "अन्दर से आग लगाई गई " की बात चाहे जितनी भी सच रही हो किन्तु गुजरात का कोई हिन्दू इसे सच मानने को तैयार नहीं है धर्मनिरपेक्षों के इस तथा कथित सच ने गुजरात के हिन्दुओं के मन में धर्मनिरपेक्षों को पूरी तरह

अविश्वसनीय बना दिया। गुजरात के चुनावों में कांग्रेस के अतिरिक्त जिन लोगां ने भी कांग्रेस की सहायता की उन सबके प्रयत्नों से कांग्रेस को भारी क्षति हुई है।

गुजरात के चनाव परिणामों ने मुझे भारी कष्ट पहुंचाया है। भारत में धर्म निरपेक्षता का अस्तित्व खतरे में है। यदि भारत का आम हिन्दू साम्प्रदायिक हो गया तो भविष्य में धर्मनिरपेक्षता किसके सहारे जोवित रहेगी? संघ का मजबूत होना धर्मनिरपेक्षता के लिये तो घातक है ही, स्वयं हिन्दुआं के लिये भो घातक है। अतः गुजरात चुनावो मं संघ को विजय ने भारत की धर्मनिरपेक्षता के समक्ष संकट पदा कर दिया है। किन्तु यदि गुजरात मे कांग्रेस जीत जाती तो उसस भी मुझे कम कष्ट नही होता। गुजरात मं भाजपा की जोत भाजपा की जीत न होकर संघ की जीत है। उसी तरह गुजरात मं कांग्रेस की जीत भी विकास की जीत न होकर सीधे सीधे मुसलमानों की जीत मानी जाती। गुजरात मं चाहे जो भी जीतता, भारत के लिये हानिकारक ही था। क्योंकि गुजरात के चुनाव दो साम्प्रदायिक संगठनों के बीच लडा जा रहा था जिसमं दुर्भाग्य वश धर्म निरपेक्ष विचार वाले दो भागों मं बटकर एक भाग गांधी वादियों के नेतृत्व में एक पक्ष का पिछलग्गू बना हुआ था तो दूसरा अटल बिहारी जी के नेतृत्व में दूसरे पक्ष के पीछे–पीछ चलने को बाध्य था।

साम्प्रदायिकता को कुचला जा सकता है किन्तु संतुष्ट नहीं किया जा सकता। महात्मा गांधी सरीखे महापुरूष भी मुस्लिम साम्प्रदायिकता को न संतुष्ट कर सके न ही समझौता। आर अंत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने भारत विभाजन कराकर ही दम लिया जिस साम्प्रदायिकता को गांधी कभी संतुष्ट नहीं कर सके उसे हमारे आज के कुलदीप नैयर, प्रभाष जोशी तथा कुछ अन्य लोग विश्वसनीय समझ रहे है यह हमारा भ्रम है। सच्चाई यह है कि भारत क्रमशः एक नये विभाजन की विलम्ब से होगा किन्तु अधिक खतरनाक होगा और यदि संघ परिवार मजबूत हुआ तो यह प्रक्रिया शीघ्र होगी किन्तु कम होगी। खतरे दोनों ही मार्गो में एक समान हैं।

मुझ अफसोस है कि इस सम्पूर्ण घटना क्रम में मैं कुछ नहीं कर सका । साम्प्रदायिक तत्वों के झगड में म किसी एक का पक्ष लेकर धर्मनिरपेक्ष होने का अपना अहं तुष्ट नहीं कर सकता था और वास्तविक धर्मनिरपेक्षता का गुजरात में कोई अस्तित्व नहीं था। मैंने अकेला किसी तीसरी लाइन पर चलने की स्थिति में नहीं था। अतः अपने घर मं बैठकर नियति के परिणाम की प्रतोक्षा करना मेरी मजबूरी थी। किन्तु अब भी सब अवसर समाप्त नहीं हुये हैं। अब तक गुजरात को दुहराने की योजनायें मात्र बन रही हैं। हम भी नयी परिस्थितियों के आधार पर अपनी नई रणनीति बना सकते हं। हमें राजनैतिक तीसरे मोचं को भूलकर एक धर्मनिपेक्ष तीसरा मोर्चा बनाना चाहिये। अब तक धर्मनिरपेक्षता के दो रूप दिख रहे हैं। 1) संघ परिवार का जो मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विरोध को ही धर्मनिरपेक्षता समझता है। 2) संघ रहित शेष लोग जो संघ विरोध को ही धर्मनिरपेक्षता मानकर अपनी योजना बना रहे हैं। तीसरा मोर्चा ऐसा बनना चाहिये जो दोनो ही मोर्चा से भिन्न परिभाषा पर काम कर रहा हो अर्थात् साम्प्रदायिकता के विरूद्ध तीसरा मोर्चा। आज की परिस्थिति का यदि ठीक–ठीक आकलन करं तो मुसलमान लगभग धार्मिक मामले में इकट्ठा है। दूसरी ओर हिन्दू गुजरात को छोडकर कहीं इकट्ठा नहीं है। गुजरात में हिन्दू एकत्रीकरण का यह पहला ही चरण मात्र है। अतः हमारी नोतियॉ ऐसी होनी चाहिये कि हम हिन्दुओं का संघ परिवार की ओर पलायन रोक सकं। इस कार्य के लिये हमे धर्मनिरपेक्ष हिन्दुओं का इस प्रकार विश्वास जीताना होगा कि संघ परिवार अलग थलग हो जावें। यह कार्य यद्यपि पहले तो कठिन नहीं था किन्तु अब थोड़ा कठिन हो गया है। संघ परिवार की अब तक की रणनीति यह है कि वह संगठन शक्ति के बल पर भावनात्मक मुद्दे उछालकर तथा असंवैधानिक तरीके से हिन्दुओं को अपनी ओर जोड रहा है। हम वैचारिक मुद्दे उछालकर, जनमत खडा करक तथा संवैधानिक तरोके से संविधान संशोधन कराकर हिन्दुओं को संतुष्ट कर सकते है। संघ राम मंदिर का मुद्दा सबसे उपर रखकर चल रहा है। हम समान नागरिक संहिता, को सर्वोच्च मुद्दा बनाकर उनके मंदिर की हवा निकाल सकते हैं। हम समान नागरिक संहिता की ऐसी परिभाषा बना सकते ह कि न मुसलमान ही उसका विरोध कर सके न संघ परिवार। यह परिभाषा कठिन नहीं है। मेरे विचार में इनके तीन सूत्र तय हो सकते हैं।

1) सम्पूर्ण भारत में धर्म परिवर्तन कराने का प्रयास को दण्डनीय अपराध माना जाय।

2) भारत में अल्पसंख्यक बहुसंख्यक के विचार को समाप्त किया जाये।

3) हिन्दू कोड़ बिल का नाम बदल दिया जाय। इसका स्वरूप भी इस तरह बदल दं कि यह हिन्द् धर्म में कोई हस्तक्षेप न करें। जिन प्रवधानों पर सब का सहमत हां वे ही लागू करें।

उपरोक्त तीन विचार सामने आते ही धर्म निरपेक्ष मोर्चे का मुस्लिम समुदाय विराध करेगा। और मुस्लिम समुदाय का विरोध ही हिन्दू समुदाय में इस मोर्चे को विश्वसनीय बनायेगा । यह मोर्चा पूरी तरह मंदिर मस्जिद जैसे संकीर्ण विवादों का डटकर विरोध करे। साथ ही संघ परिवार के अन्य साम्प्रदायिक विचारों का भी विरोध करे। यह तरीका संघ परिवार में विघटन पैदा करेगा तथा भा. ज. पा. का एक समूह सीधा सीधा इस मोर्चे से जुड सकता है। मैं ऐसी उम्मोद करता हूँ कि कांग्रेस पार्टी भी बहुत आसानी से इस अभियान में शामिल हो जायगी। क्योंकि यह रास्ता कांग्रेस को साधु संतो या मंदिरों की चापलूसी से मुक्त करा देगा ।

मैंने पूर्व मं भी लिखा था और अब पुनः लिख रहा हूँ कि साम्प्रदायिकता से मुकाबला सहिष्णता से कदापि संभव नहीं है। सहिष्णुता व्यक्ति के लिये अच्छा गुण है किन्तु यदि व्यवस्था प्रमुख ऐसा मार्ग चुने तो वह दुर्गुण हो जाता है। धर्म निरपेक्षता का अर्थ मुस्लिम कट्टरवाद के प्रति सहिष्णुता से जोड कर देखना सच्चाई से दूर भागने के समान है और मेरे धर्म निरपेक्ष यही भूल लगातार कर रहे हैं। गुजरात ने एक अवसर दिया है कि वे अपनी हठ धर्मिता छोड़े आर सम्पूर्ण कार्य प्रणाली पर पुनविचार करें। यदि ऐसा नहीं हुआ तो भारत का जो साम्प्रदायिक ध्वीकरण होगा उसका दायित्व धर्मनिरपेक्ष मित्रों का माना जायेगा।